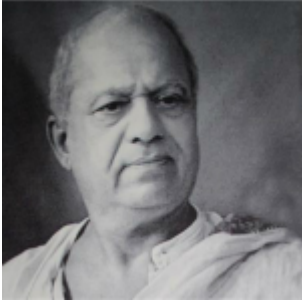


दादा साहब फाल्के के शब्दों में: जब उन्होंने पहली बार फिल्म देखी



1910 में बंबई के अमरीका-इंडिया पिक्चर पैलेस में मैंने 'द लाइफ ऑफ़ क्राइस्ट' फिल्म देखी. इससे पहले, कई बार अपने परिवार या मित्रों के साथ फिल्में देखी होंगी, लेकिन क्रिसमस के उस शनिवार को, मेरे जीवन में एक क्रांतिकारी बदलाव हुआ. उस दिन भारत में, उस उद्योग की नींव रखी गई, जिसका वर्तमान में छोटे-बड़े बेशुमार उद्योगों में पांचवां स्थान है. और यह सब कुछ एक गरीब ब्राह्मण के हाथों हुआ. ईसा मसीह के जीवन के महान कार्यों को देखकर, अनजाने में तालियां बजाते हुए, मैं कुछ ऐसा अनुभव कर रहा था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता. चक्षु के सामने ईसा मसीह का जीवन चरित्र चल रहा था तो मेरे मन के चक्षु भगवान श्रीकृष्ण और भगवान राम तथा गोकुल और अयोध्या के चित्र देख रहे थे.

एक विचित्र सम्मोहन ने मुझे जकड़ लिया. फिल्म समाप्त होते ही मैंने दूसरा टिकट खरीदा और फिर से फिल्म देखी. इस बार मैं परदे पर अपनी कल्पनाओं को साकार होते देख रहा था. सोच रहा था कि क्या यह वास्तव में संभव है? क्या हम भारत पुत्र कभी परदे पर भारतीय प्रतिमाएं देख पाएंगे? सारी रात इसी मानसिक दुविधा में गुजर गई. इसके बाद लगातार दो महीने तक यह हाल रहा कि जब तक मैं बंबई के सभी सिनेमाघरों में चलने वाली हर फिल्म न देख लेता, चैन नहीं आता.



इस दौरान मैं फिल्मों के विश्लेषण और उन्हें यहां बनाने की संभावनाओं पर सोच विचार में लगा रहता. इस व्यवसाय की उपयोगिता और उद्योग के महत्व के बारे में कोई शंका नहीं थी. लेकिन सवाल यह था कि यह सब कुछ कैसे संभव हो पाएगा? भाग्यवश, मैं इसे कोई समस्या नहीं मानता था. मुझे विश्वास था कि परमात्मा की दया से मुझे निश्चय ही सफलता मिलेगी. फिल्म निर्माण के लिए आवश्यक मूल

शिल्पकलाओं- ड्राइंग, पेंटिंग, आर्किटेक्चर, फोटोग्राफी, थिएटर और मैजिक की जानकारी भी मुझे थी. इन कलाओं में अपनी कुशलता के लिए मैं स्वर्ण और रजत पदक भी जीत चुका था. फिल्म निर्माण में सफलता की मेरी आशा को इन कलाओं में मूलभूत प्रशिक्षण ही बलवती बना रहा था. लेकिन यह कैसे पूरी होगी ? कैसे ?

पागलखाने पहुंचने को आतुर

मुझमें चाहे जितना आत्मविश्वास और उत्साह हो, कोई भी व्यक्ति मुझे तब तक पूंजी नहीं दे सकता जब तक उसे आकर्षित करने के लिए, उसे प्रत्यक्ष दिखाने के लिए कुछ न हो. इसलिए मेरे पास जो कुछ भी था वह बेच-बाचकर मैं इस काम में जुट गया. मित्रों ने मुझे पागल करार दिया. एक ने तो मुझे थाना के पागलखाने पहुंचाने तक की योजना बना ली थी. विलायत से कैटलॉग, किताबें, कुछ जरूरी चीजें आदि मंगवाकर लगातार प्रयोग करने में छह महीने बीत गए. इस दौरान मैं शायद ही किसी दिन तीन घंटों से ज्यादा सोया होऊंगा.

मेरे पास जो कुछ भी था वह बेच-बाच कर मैं इस काम में जुट गया. मित्रों ने मुझे पागल करार दिया. एक ने तो मुझे थाना के पागलखाने पहुंचाने तक की योजना बना ली थी.

रोज शाम को चार पांच घंटे सिनेमा देखना और शेष समय में मानसिक विचार और प्रयोग. विशेषतः परिवार के लालन-पालन की जिम्मेदारी के साथ-साथ रिश्तेदारों द्वारा व्यंग-तिरस्कार, असफलता का भय आदि के कारण मेरी दोनों आंखें सूज गई थीं. मैं बिलकुल अंधा हो गया. लेकिन डॉक्टर प्रभाकर के सामयिक उपचार के कारण मेरा दृश्य-जगत मुझे वापस मिल गया. तीन-चार चश्मों की सहायता से मैं फिर अपने काम में जुट गया. वाकई, आशा बड़ी चमत्कारी होती है !

यह स्वदेशी आंदोलन का काल था. स्वदेशी पर भाषणों की इफरात थी. परिणामतः मैं अपनी अच्छी-भली सरकारी नौकरी छोड़कर स्वतंत्र औद्योगिक व्यवसाय प्रारंभ करने को प्रेरित हुआ. इसी अनुकूल काल में मैंने अपने मित्रों और स्वदेशी आंदोलन के नेताओं को अपने कल्पना जगत के सिनेमा की स्वप्निल आशाएं दर्शायीं. जो लोग दस-बीस साल से जानते थे, स्नेह करते थे, उन्हें भी मेरी बात कल्पना जैसी लगी और मैं उनकी हंसी का पात्र बन गया.

अंततः मेरे एक मित्र ने इस योजना पर ध्यान देना स्वीकार किया जिनसे मेरे पिछले दस-पांच सालों के व्यावसायिक संबंध थे और जिन्हें मेरे व्यवसाय के प्रति प्रेम, लगन के बारे में प्रत्यक्ष जानकारी थी. उन्हें मैंने अपनी योजना समझाई. वे राजी हुए, मेरे मित्र बीस-पच्चीस हजार रुपये का इंतजाम कर सकते थे. और इस बात का अंदाजा कोई ही लगा सकता है कि यूरोपीय-अमरीकी कंपनियों की पूंजी की तुलना में बीस-पच्चीस हजार रूपए की रकम कम थी ! मुझे आशा थी कि दो-चार फिल्में रजतपट पर आने के बाद कारखाना अपनी आय से धीरे-धीरे अपना विकास करेगा या जरूरत पड़ने पर मेरे मित्र अधिक पूंजी की व्यवस्था करेंगे या पकी-पकाई खाने के लिए कोई धनी ही आ जाएगा.

मारवाड़ी एग्रीमेंट

मुझे इस बात का अभिमान है कि मैं कोई भी कदम जल्दबाजी में नहीं उठाता. इस बार भी अपनी कल्पनाओं और विदेशों में प्रत्यक्ष कृति का अंतर समझने के लिए एक बार विलायत गए बिना बड़ी रकम लगाना मैंने उचित नहीं समझा. जाने-आने और जरूरी सामान खरीदने के लिए बहुत ही कम राशि की जरूरत थी. मैंने स्वयं खुशी से एक ऐसा 'मारवाड़ी एग्रीमेंट' लिख दिया जिसके अनुसार यदि भगवान ने मुझे सफलता दी तो साहूकार का कल्याण हो जाए. और इस तरह एक इतनी सी राशि पर (जिसमें एक अच्छा सा हेयरकटिंग सैलून या क्षुधा शांति भुवन खोला जा सकता है) केवल व्यवसाय-प्रेम के लिए और हिंदुस्तान में सिनेमा कला की स्थापना करके रहूंगा, इस विश्वास के साथ इस विशाल व्यवसाय की नींव रखी.

मैंने स्वयं खुशी से एक ऐसा 'मारवाड़ी एग्रीमेंट' लिख दिया जिसके अनुसार यदि भगवान ने मुझे सफलता दी तो साहूकार का कल्याण हो जाए.

विलायत के लिए मैं एक फ़रवरी, 1912 को बंबई से रवाना हुआ. विलायत की यह मेरी दूसरी यात्रा थी. वहां पहुंचने पर मेरी आशाएं और बलवती हुईं. मेरी कल्पनाएं और फिल्म निर्माण का वास्तविक तंत्र बिलकुल एक सा था. कुछ यन्त्र आदि खरीदे. बड़ी मुश्किल से एक प्रसिद्ध कारखाने में फिल्म निर्माण का कार्य देखा और कुछ काम स्वयं भी करके दस-बारह दिनों में ही लौट आया.

मातृभूमि लौटने पर एक-दो महीने में ही अपनी ही पत्नी और बच्चों की सहायता से सौ-दो सौ फुट लंबाई का चित्रपट तैयार किया ताकि मेरे मित्र को संतुष्टि हो और भविष्य के प्रति उम्मीद बंधे. अभिनेताओं को रखकर एकाध नाटक तैयार करने के लिए मुझे रकम की दरकार थी. मेरा बनाया हुआ चित्र परदे पर देख और सफलता का पूरा विश्वास होने के बाद साहूकार ने उचित संपत्ति गिरवी रखकर आवश्यक रकम दी. विज्ञापन देकर नौकर और शिष्य एकत्रित किए और उन्हें तैयार कर छः महीने के अन्दर ही 'राजा हरिश्चंद्र' चित्रपट परदे पर लाया. इस चित्रपट की एक ही प्रति पर आश्चर्यजनक आय हुई. इस चित्रपट की दर्जन भर प्रतियों की मांग थी. लेकिन एक ही प्रति की यह आय इतनी अधिक थी कि कारखाने के काम को आगे बढ़ाया जा सकता था. बरसात में चार महीने काम बंद रखने के बाद तीन अक्टूबर 1913 को कारखाना बंबई से नासिक ले गया. अनेक दृष्टि से व्यवसाय के लिए यही स्थान उपयुक्त होने के कारण वहीं स्थाई होकर 'मोहिनी भस्मासुर' तैयार किया. इस चित्रपट ने भी प्रथम फिल्म जैसी ही आय दी. उत्साहित होकर तीसरा चित्रपट 'सावित्री सत्यवान' दुनिया के सामने लाया. इसने पिछले दोनों चित्रपटों के यश और आय में वृद्धि की. जैसे-जैसे आय जमा होती गई, कारखाने में लगता गया.

इस चित्रपट की एक ही प्रति पर आश्चर्यजनक आय हुई. इस चित्रपट की दर्जन भर प्रतियों की मांग थी. लेकिन एक ही प्रति की यह आय इतनी अधिक थी कि कारखाने के काम को आगे बढ़ाया जा सकता था.

मेरे काम की ख्याति विदेशों तक पहुंच चुकी थी और वहां की एक कंपनी ने हर नाटक की 20-22 प्रतियों की मांग की. हिंदुस्तान में सोल एजेंसी लेने के लिए लोग तैयार हो गए. हिंदुस्तान के पांच सौ-सात सौ थिएटरों को मेरे चित्रपट चाहिए थे. अब तक सब काम हाथों से चलता था और बहुत ही धीमी गति से होता था. बिजली के यंत्र तथा अन्य उपकरणों पर 25-30 हजार रुपए और खर्च कर एक छोटा सा

स्टूडियो स्थापित करने से धीरे-धीरे व्यवसाय ठीक रास्ते पर बढ़ेगा. 'व्यवसाय' की दृष्टि से लाभप्रद होने के लिए उपरोक्त रकम (25-30 हजार रुपए) काफी है, यह विश्वास अपने मित्र को दिलाने के बाद नए यंत्र लाने और विदेश में अपने व्यवसाय की भावी उन्नति की स्थापना करने के उद्देश्य से 'मोहिनी,' 'सावित्री' आदि चित्रपट साथ में लेकर मैं विलायत गया.

वाह भारत! आह भारत!

कारखाने में नियुक्त कर सवा दो साल तक शिष्यों को विभिन्न शाखाओं में तरह-तरह से प्रशिक्षित किया ताकि उनके तैयार चित्रपट की मांग इंग्लैंड-अमेरिका में हो. फिल्म की सिर्फ एक प्रति से इतनी आय हो कि कोई भी ललचा जाए. जिन्हें सिनेमा शब्द की स्पेलिंग भी पता नहीं, ऐसे बिलकुल नए लोगों द्वारा हाथ से चलने वाले यंत्र द्वारा बिना स्टूडियो के इतनी कम लागत में बनाई गई फिल्म ने विलायत में पूंजी वाले और प्रशिक्षित लोगों को चकित कर दिया. वहां के विशेषज्ञ फिल्म पत्रिकाओं ने उसे अद्भुत करार दिया. इससे अधिक मेरे कारखाने के कर्मचारियों-भारतपुत्रों को और क्या चाहिए था?

नतीजा यह हुआ कि मेरे कर्मचारियों का वेतन तो दूर उनके मामूली व्यय भी बंद कर दिए गए. हिन्दुस्तान लौटने तक सब उधार लेकर दिन गुजार रहे थे.

किन्तु, आह! मेरी तीसरी यात्रा ऐन विश्वयुद्ध शुरू होते ही हुई. युद्ध का परिणाम इंग्लैंड के भारत में दलालों, कमीशन एजेंटों पर बहुत बुरा पड़ा. उन दिनों में इंग्लैंड में था. वहां सड़कों पर जगह-जगह पोस्टर लगे थे, 'बिजनेस एजेंट और प्रोफेशनल' और भारत में लोग अपनी जमीन-जायदाद छोड़कर बंबई से अपने जन्मस्थानों की ओर लौट रहे थे. इंग्लैंड में जब हर आधे घंटे बाद युद्ध संबंधी समाचार बुलेटिन प्रकाशित हो रहे थे तब मेरी 'मोहिनी भस्मासुर' और 'सत्यवान' आदि फिल्मों के शो आयोजित करने और लंदन में भारतीय फिल्मों को गौरव दिलाने के लिए कोशिशें हुईं. लेकिन हिंदुस्तान में मेरे कारखाने की तालाबंदी कर मेरे प्रशिक्षितों को भगाने तक की नौबत आ चुकी थी. हिंदुस्तानियों की तरह मेरा साहूकार भी भयभीत हो जाने से पैसे लगाने से पीछे हटने लगा. नतीजा यह हुआ कि मेरे कर्मचारियों का वेतन तो दूर उनके मामूली व्यय भी बंद कर दिए गए. हिन्दुस्तान लौटने तक सब उधार लेकर दिन गुजार रहे थे. बंबई से वहां की परिस्थितियों के बारे में तार या पत्र ना आने से खरीदा हुआ सामान इंग्लैंड में छोड़ना पड़ा और मैं खाली हाथ हिंदुस्तान आया.

वापिस लौटने पर हर तरह से साहूकार को समझाया, उसके हाथ-पांव पकड़कर इंग्लैंड तार भिजवाया और खरीदा सामान मंगवाया. स्टूडियो योजना मेरे बक्से में ही पड़ी रही. कारण बताने की जरूरत नहीं.

मुसीबत अकेले नहीं आती

लेकिन मुसीबत अकेले नहीं आती. जब खाली होने पर स्वार्थी लोग छोड़कर चले गए. जो कुछ थोड़े से ईमानदार लोग बचे उन्हें मलेरिया ने धर दबोचा.

मेरा चीफ फोटोग्राफर दो बार मौत के मुंह से लौटा. इलेक्ट्रीशियन हैजे के कारण चल बसा. बिजली का इंजन फूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया. मेरे मैनेजर को इतनी भयानक बीमारी हुई कि बिना ऑपरेशन के

चारा नहीं था. उसे जेजे हॉस्पिटल में किसी अनाथ की तरह रखना पड़ा. इस बीमारी की स्थिति में उसके खिलाफ पुलिस ने मुकदमा खड़ा किया. वकीलों की फीस, बार-बार बढ़ने वाली पेशियां, गाड़ी भाड़ा, गवाह-सबूत आदि के चक्कर में मैं फंस गया. दयालु सरकार के न्यायी दरबार में मेरा आदमी दोषमुक्त कर दिया गया और स्वयं कोर्ट ने उलटे पुलिस पर मुकदमा दायर करने की अनुमति दे दी. क्या इसी तरह परमपिता का न्याय दरबार मुझे संकटमुक्त नहीं करेगा? ऐसे संकट में भी मैंने 'श्रियाल चरित्र' की तैयारी शुरू की. काम की थोड़ी बहुत शुरुआत हुई थी कि राजा श्रियाल को 103-104 डिग्री बुखार चढ़ गया. मुझे इसकी जानकारी न देते हुए उसने किसी तरह दो-चार दृश्य ईमानदारी के साथ पूरे किए. परिणामस्वरूप उसकी तकलीफ और बुखार बढ़ गया, और वह बिस्तर से उठने में भी असमर्थ हो गया. देवदार की पत्तियों से बनी सीढ़ियां उतरते हुए चांगुणाबाई के पैर में मोच आ गई.

ऐसे आपातकाल में भी एक दैवी शक्ति का मुझे सहारा था. सिर्फ उसी के प्रोत्साहन और मुझसे भी अधिक उसकी कठिन तपस्या के कारण आज मुझे यह सुदिन देखने को मिला है.

मेरा दृढनिश्चय चाहे जितना अटल हो, लेकिन साढ़े तीन हाथ के इस हाड़-मांस के शरीर पर तो आपत्तियों का परिणाम होगा ही! अर्ध-कपाली (आधा सिरदर्द) से मैं पीड़ित हो गया. चिंताओं और कष्टों के कारण मेरी नींद उड़ गई. प्रसन्नता की बात यह है कि ऐसे आपातकाल में भी एक दैवी शक्ति का मुझे सहारा था. सिर्फ उसी के प्रोत्साहन और मुझसे भी अधिक उसकी कठिन तपस्या के कारण आज मुझे यह सुदिन देखने को मिला है. ऐसे ही कटु काल में एक रात मैं तकिया पर सिर टेके चिंतामग्न बैठा था कि मेरे पास बैठकर मुझे सांत्वना देने वाली शक्ति धीरे से बोली, 'इतने से परेशान क्यों होते हो? क्या चांगुणा का काम मैं नहीं कर पाऊंगी? आप निर्जीव तीलियां परदे पर नचाते हैं, फिर मैं तो मानव हूं. आप मुझे सिखाइए. मैं चांगुणा का काम करती हूं. लेकिन श्रियाल आप बनिए. मेरे नाम का विज्ञापन मत कीजिए.' बालक चिलया की भूमिका मेरा बड़ा बेटा निभा रहा था. चाहे सिर्फ कैमरा के सामने ही क्यों न हों, जो साध्वी अपने जाये बेटे पर तलवार उठाने के लिए तैयार हो गई, पति के पास कर्मचारियों की कमी होने के कारण मुंह पर रंग पोतने के लिए जो तैयार हो गई, जिसने एक बार नहीं, दस-पांच बार शरीर पर जो भी छोटा-मोटा गहना था, देकर संकट के समय सहायता की, 'परमपिता आपको लंबी उमर दे, मुझे मंगलसूत्र के सिवा और किसी चीज की जरूरत नहीं' ऐसी त्यागपूर्ण जिसकी भावना है, उस मेरी गृहलक्ष्मी के कारण ही मुझे अपने कार्य में सफलता मिल रही है.

यह साबित किए बिना

मेरी सफलता के और भी कारण हैं. मेरे थके हुए मन को उत्तेजित करने वाले 'स्टीम्यूलंट्स' मेरे पास काफी हैं. यह आदमी को जानवर बना देने वाले नहीं और न पहले ही घूंट के साथ नरक का द्वार दिखाने वाले हैं. बल्कि इसके सेवन से दरिद्रावस्था में, कटु काल में, संकट में सदा सात्विक उत्तेजना ही प्राप्त होती है. ईमानदार और जान लड़ा देने वाले कर्मचारी, निस्वार्थी मित्रमंडली, कुलशीलवान भार्या, आज्ञाकारी और सुयोग्य संतति और स्वार्थ को भुला देने वाला कारखाने का वातावरण. इतने 'स्टीम्यूलंट्स' के डोज मिलते रहने पर मैं थका हारा नहीं, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है!

मुझ जैसे व्यक्ति को कौन रकम देता, जिसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी! सारांश, जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता

गया मेरी आशाएं निराशाओं में परिवर्तित होने लगीं.

पूजी प्राप्त करने के लिए मुझे इस परिस्थिति में नई फिल्म बनाकर दुनिया को दिखाना होगा. मुझ जैसे व्यक्ति को कौन रकम देता, जिसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी! सारांश, जैसे-जैसे युद्ध बढ़ता गया मेरी आशाएं निराशाओं में परिवर्तित होने लगीं.

पूजी जुटाने के लिए मैंने हरसंभव प्रयास किया. पहली बात मेरे साहूकार के और दूसरी भगवान के वश में थी. यदि मैं एक भी फिल्म पूरी कर सका तो इस युद्धकाल में भी नई पूजी खड़ी कर सकता हूं और चार-पांच फ़िल्में पूरी करने योग्य रकम की व्यवस्था होने पर अपने को उबारकर स्वतंत्र तौर पर अपने पैरों पर खड़ा कर सकता हूं, इस आत्मविश्वास के साथ मैंने एक 'स्कीम' प्रकाशित की. शर्म की बात ये है कि इसमें कम से कम एक रुपया कर्ज, ब्याज पर मांगने के बावजूद महाराष्ट्र के दो केन्द्रों से, पूना और बंबई इन दो आंदोलनकारी मराठी शहरों से, मुझे कुल तीन आश्रयदाता मिले. सूखी सहानुभूति की पत्थर वर्षा में मुझे तीन हिरकनियां नजर आईं. मेरे पास 100 रुपए जमा करने वाली एक हिरकनी ने 'संदेश' में एक विस्तृत लेख लिखकर 'होमरूल' के पंद्रह हजार वीरों से आग्रहपूर्वक निवेदन किया था कि वे मुझे पांच-पांच रुपए दें लेकिन पांच कौड़ियां भी इन राष्ट्रभक्तों से नहीं मिलीं. न फालके नए थे, न उनका काम. ज्यादा देने की शक्ति नहीं, कम देने में लाज आती है. हां, न देने के समर्थन में हमारा वाक्-पांडित्य भरपूर है. 'होमरूल' के एक बहुत बड़े नेता ने मुझे स्पष्ट किया कि पहले आप 'होमरूल' के सदस्य के साथ जाइए, होमरूल मिलते ही पूजी की कमी नहीं रहेगी.

चार हाथ दस मुंह

इसी बीच 'पैसा फंड' ने कमर कस ली. गांव में दशहरे के समय पैसा इकट्ठा किया जाता था. इसके तहत सौ-सवा सौ रुपए की राशि जमा हो जाती थी. एक गांव के लोगों ने सौ रुपए जमा कर मुझे देने की घोषणा समाचारपत्र में कर दी. 'पैसा फंड' के दो-तीन व्यक्तियों का मुझे समर्थन भी प्राप्त था. इसके बावजूद मुझे पैसा नहीं मिला. घोड़ा कहां अड़ा, कभी पता नहीं चला. मुझे कई कारण मालूम हुए हैं. लेकिन मेरी राय में जो काम चुप रहकर काम करने वाले हाथों से हो जाता है, दस बोलने वाले मुंह से संभव नहीं होता है.

साभार- <https://satyagrah.scroll.in> से